REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.2331(UIF)
VOLUME - 7 | ISSUE - 4 | JANUARY - 2018
UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514

कबीर, जायसी, तुलसी, सूर और स्वर्णयुग

सुरेन्द्रा कुमारी
शोधार्थी, हिन्दी–विभाग ,
माधव विश्वविद्यालय, पिण्डवाड़ा, सिरोही (राज.)

सारांश

हिन्दी साहित्य के इतिहास पर जब भी चर्चा की जाती है तब भक्तिकाल के संबंध में प्रारंभ से अंत तक जो बात सर्वाधिक रूप से प्रमाणित होकर सामने आती है, वह है – भक्तिकाल को **'स्वर्ण युग'** कहा जाना। एक विचार या प्रश्न जो कदाचित सभी विचारकों के मस्तिष्क में कौंधता हैं कि आखिर क्यों इसे स्वर्ण युग कहा जाता है?

सभी काल अपने आप में महत्त्वपूर्ण हैं लेकिन, भक्तिकाल को स्वर्ण युग क्यों कहा जाए ? इसके संबंध में जो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात है, वह यह है कि – **''कालदर्शी भक्त कवि जनता के हृदय को संभालने और लीन रखने के लिए दबी हुई भक्ति को जगाने लगे। क्रमशः भक्ति का ऐसा प्रवाह विकसित और प्रबल हो गया कि उसकी लपेट में केवल हिन्दू जनता ही नहीं देश में बसने वाले सहृदय मुसलमानों में भी न जाने कितने आ गए।''**[1]

भक्ति आंदोलन की जो लहर दक्षिण से आयी उसी ने उत्तर भारत की परिस्थिति के अनुरूप हिन्दू–मुसलमान दोनों के लिए एक सामान्य भक्ति मार्ग की भावना कुछ लोगों में जगाई। तमाम भक्ति कवि चाहे सगुण पंथ के हो या निर्गुण पंथ के, भक्ति संबंधी उत्कृष्ट रचनाएं करके भक्तिकाल को इसके उत्कर्ष पर पहुँचाने का कार्य किया। न सिर्फ साहित्य बल्कि जनता के मनोभावों को भी भक्तिमय बनाने का कार्य इस काल के कवियों ने किया। नैतिक मूल्यों व मर्यादा की प्रतिष्ठा के साथ परम्परागत रूढ़ियों के प्रति आक्रोश भी इन कवियों का स्वाभाविक गुण दृष्टगोचर होता है।

भक्तिकाल को स्वर्ण का युग कहा जाना भी इस आधार पर सत्य प्रतीत होता हैं कि इस काल के सभी कवियों ने इस धारा को आगे बढ़ाने के लिए अपना सर्वोत्तम प्रयास किया। कबीर, जायसी, तुलसी, सूर के विवेचन से यह बात पुष्ट होती है। इसमें संदेह नहीं कि कबीर ने ठीक मौके पर जनता के उस बड़े भाग को संभाला जो नाथ पंथियों के प्रभाव से प्रेमभाव और भक्ति से शून्य और शुष्क पड़ता जा रहा था, उसे भक्ति के मार्ग पर अग्रसर किया। उनके द्वारा यह बहुत ही आवश्यक कार्य हुआ इसके साथ मनुष्यत्व की सामान्य भावना को आगे करके निम्न श्रेणी की जनता में उन्होंने आत्म–गौरव का भाव जगाया और भक्ति में ऊँचे से ऊँचे सोपान की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित किया।

जिस युग में **कबीर** का आगमन हुआ था, उसके कुछ ही पूर्व भारतवर्ष के इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना घट चूकी थी। इस घटना ने इस्लाम जैसे भारतीय धर्म मत और समाज व्यवस्था को बुरी तरह झकझोर दिया था। उसकी अपरिवर्तनीय समझी जाने वाली जाति व्यवस्था को पहली बार जबर्दस्त ठोकर लगी थी।

समस्त भारतीय वातावरण क्षुब्ध था। बहुत–से पंडितजन इस क्षोभ का कारण खोजने में व्यस्त थे और अपने–अपने ढंग से भारतीय समाज और धर्म मत को संभालने का यत्न कर रहे थे।[2]

आज के संदर्भ में अगर **कबीर** की प्रासंगिकता की बात करें तो भक्तिकाल को ही आदर्श मानते हुए उनकी प्रासंगिकता स्वतः सिद्ध हो जाती है। कबीर ने संसार को माया माना और लोगों को चेताया कि, वो हृदय के अंदर बैठे ईश्वर को पहचानने कर प्रयास करें, परंतु विडम्बना यह है कि आज लगभग छः–सात सौ वर्षों के बाद भी हम कबीर तक पहुँच पाने में असफल रहे।

कबीर के साथ भक्तिकाल के अन्य प्रमुख कवियों में **जायसी** का नाम आता है। जायसी का पूरा नाम मलिक मुहम्मद जायसी था। उनके जन्म स्थान और जन्मतिथि के बारे में मतभेद हैं परन्तु, जायसी के निवास का पता उनकी रचना में ही लगता है। जैसे –

जायस नगर धरम अस्थानू।
जहाँ आई कबि कीन्ह बखानू।।
तहा दिवस दस पहुँचे आएउं।
भा वैराग बहुत सुख पाएउं।।

जायसी ने स्वयं अपने को एक आँख का काना कहा है। उनको एक कान से सुनाई नहीं पड़ता था। जैसे –

मुहम्मद बाई दिसि तजी एक सखन एक आँखि।
एक नैन कबि मुहमदी गुनी सीई विमोहा जेइ कवि सुनी।।[3]

विजयदेव नारायण साही ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि जायसी सूफी संत नहीं थे। अपने पक्ष के समर्थन में उन्होंने **'आइन–ए–अकबरी'** और **'बदांयूनी'** के मुतरवाबुल–तवारीख आदि का हवाला दिया है।[4]

आचार्य रामचन्द्र भाुक्ल ने इस पर बड़ी सटीक टिप्पणी की है– जायसी बड़े भावुक भगवद भक्त थे और अपने समय में बड़े ही सिद्ध और पहुँचे हुए फकीर माने जाते थे। परन्तु कबीरदास के समान अपना एक निराला पंथ निकालने का हौसला उन्होंने कभी नहीं किया। जिस मिल्लत या समाज में उनका जन्म हुआ, उसके प्रति अपने विशेष कर्तव्यों के पालन के साथ–साथ वे सामान्य मनुष्य धर्म के सच्चे अनुभवी थे।[5]

विभिन्न विद्वानों और शोधार्थियों की खोजों के आधार पर जायसी के चौबीस ग्रंथों का उल्लेख किया जाता है। शुक्ल जी ने जायसी ग्रंथावली में तीन ग्रंथ ही सम्मिलित किए हैं– पद्मावत, अखरावट और आखिरी कलाम।

पद्मावत, जायसी का ही सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ नहीं है बल्कि समूची हिन्दी काव्य परम्परा का एक दुर्लभ रत्न है। इसकी रचना 1540 ई. में हुई थीं। **'पद्मावत'** की प्रबंध संरचना अन्य प्रेमाख्यान काव्यों से अनेक अर्थों में भिन्न है, दूसरे प्रेमाख्यानों में सामान्यतः प्रेमी–प्रेमिका के मिलन के बाद आख्यान समाप्त हो जाते हैं, किन्तु 'पद्मावत' की वास्तविक शुरूआत यही से होती है। इसका समापन इस प्रकार की त्रासदी और रचनात्मक मृत्युभोज से होता है।[6]

पद्मावत की कथा मोटे तौर पर दो भागों में विभक्त है– **सिंहल कथा और चित्तौड़–दिल्ली कथा**। पहली कथा को अनेक प्रकार के पौराणिक करिश्मों, अप्राकृत तत्त्वों, यौगिक क्रियाओं, कथानक रूढ़ियों से इस तरह बुना गया है कि उसकी सारी बुनावट फंतासी लगती है। पद्मावत के विषय में आलोचकों ने कहा है कि – **कोई रहे न रहे, पद्मावत है और रहेगा**। जायसी ने भी कहा है– **'फूल मेरे पै मरै न बासू'**। जायसी मृत्युजंय बन गये।

भक्तिकाल के सर्वश्रेष्ठ एवं समग्र भावों को आत्मसात कर समाज के समक्ष प्रस्तुत करने वाले महान कवि **गोस्वामी तुलसीदास** है। तुलसीदास की जन्म तिथि का निश्चय करने के लिए विद्वानों ने मूल गोसांई चरित तुलसी प्रकाश, गौतम चन्द्रिका, घट रामायण आदि का आधार ग्रहण किया है। घट रामायण के साक्ष्य पर उनका जन्म संवत् 1589 (सन् 1537 ई.) मान लिया गया है। उनके जन्म स्थान के बारे में भी विद्वानों में मतैक्य नहीं हैं, कोई अयोध्या को उनका जन्म स्थान मानता है, तो कोई राजापुर को, तो कोई सोरो को, अधिकांशतः लोग राजापुर के पक्ष में हैं। जनश्रुतियों के आधार पर उनके पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसी देवी तथा पत्नी का नाम रत्नावली बताया गया है। कहा जाता है कि रत्नावली के प्रति वे अत्यधिक आसक्त थे। एक दिन बिना बुलाये जब वे रत्नावली के पास उनके मायके चले गए तब रत्नावली ने इसके लिए

उन्हें खूब फटकारा। इसके फलस्वरूप उन्होंने रामानंद मत में दीक्षा ले ली। नरहर्यानन्द को उनका गुरू बताया गया है। संवत् 1680 (सन् 1623 ई.) में उनका महाप्रयाण हुआ। यह तिथि भी जनश्रुतियों पर ही आधारित है।

तुलसीदास को समन्वय का कवि कहा जाता है लेकिन उनकी रचनाओं में **'कवितावली'** एक ऐसी रचना है, जिसमें उनकी समाज की विषमता का खिन्नता के साथ वर्णन किया है। समन्वय स्थापित करना एक आदर्श की स्थापना करता है। विषमता का चित्रण समाज की वास्तविकता को उजागर करना एवं यथार्थ की ओर उन्मुख होना है। आदर्श और यथार्थ जब एक साथ देखा जाए तो विद्रुपता को हटाने का रास्ता स्वतः दिखाई देने लगेगा। सामंजस्य ही जीवन है और जो सामंजस्य नही कर पाता है, वही जीवन से आनंद प्राप्त करते हुए उसका उपभोग करता है। उनका समस्त काव्य समन्वय, समन्वय की विराट चेष्टा है। लोक और शास्त्र का समन्वय, गृहस्थ और वैराग्य का समन्वय, भाषा और संस्कृत का समन्वय, कथा और तत्त्व ज्ञान का समन्वय, ब्राह्मण और चांडाल का समन्वय, पंडित और अपंडित का समन्वय, '**रामचरित–मानस'** शुरू से आखिर तक समन्वय का काव्य है।[7]

तुलसीदास भक्ति काव्यधारा के एक ऐसे कवि है, जिन्होंने अपने कवि हृदय से लेकर लोक के हर एक कोने का स्पर्श किया और लोक कवि वही है, जिसे लोक हृदय की पहचान हो। आचार्य **रामचन्द्र भुक्ल** कविता के लिए हृदय की मुक्तावस्था को महत्त्वपूर्ण मानते है और उसका ज्ञान भी लोकबद्ध है। अतः लोक हृदय में स्वयं के हृदय का समन्वय होना ही मनुष्यता की सार्थकता है। मनुष्य लोकबद्ध प्राणी है, उसका अपनी सत्ता का ज्ञान तक लोकबद्ध है। लोक के भीतर ही कविता तथा अन्य कलाओं का प्रयोग और विकास होता है।

गोस्वामी तुलसीदास की पुस्तक **'श्री रामचरितमानस'** जन ग्रंथ हैं, उसकी व्याख्या अनेक संदर्भों में की गई है। जीवन की परिस्थितियों की व्याख्या से बड़ी विचारधारा कोई नहीं है। इसके आगे धर्म दर्शनशास्त्र, अनेक विचारधारा के लेखक कई बार छोटे प्रतीत होते हैं, लोक उन्हें ही स्वीकारता है और नया स्वर देता है, जो लोक के मानस की अनुभूति करने लगता हैं। साहित्य में अनेक आचार्य हुए जो सिर्फ आचार्य बनने की लालसा से अपनी लेखनी को जमकर पकड़े रहे, वो आचार्य तो हो गए लेकिन लोक कवि न हो सके। आचार्य तुलसीदास एक लोक कवि है, जिन्होंने अपनी भक्ति, प्रेम, कर्म से जनमानस को **'श्री रामचरितमानस'** बना दिया।

तुलसी, तुलसी सब कहै, तुलसी वन की धारा।
कृपा भई रघुनाथ की तुलसी, तुलसीदास।।[8]

सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य में कृष्ण भक्ति काव्य परम्परा सबसे लम्बी और समृद्ध रही है। यह 15वीं शताब्दी से आरंभ होकर 20वीं शताब्दी में रत्नाकर के बाद तक चलती रही है। कृष्ण काव्य का भौगोलिक विस्तार भी बड़ा है और उससे श्रेष्ठ कवियों की संख्या भी अधिक है। सूरदास के बारे में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है– **''सूर की रचना इतनी प्रगल्भ और काव्यांगपूर्ण है कि आगे होने वाले कवियों की उक्तियाँ सूर की जूठी मालूम पड़ती है।''**[9]

अष्टछाप के कुछ कवि अपनी कतिपय मौलिकता के लिए उल्लेख करते हैं। **मीरा** के पदों की माधुरी, संगीत, विहल, आत्मसमर्पण अपने आप में ही नहीं सम्पूर्ण कृष्ण भक्ति काव्य परम्परा में विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। **रसखान** आज भी सहृदयों के कंठहार बने हुए हैं।

सूर को अनेक रचनाओं का प्रणेता माना जाता है। अब–तक उनके नाम पर प्रचलित 25 कृतियों का पता लगा हैं। परन्तु उनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है। सूरदास की तीन प्रसिद्ध कृतियों की चर्चा की जाती हैं – सूरसावली, सूरसागर और साहित्यलहरी।

'सूरसागर' एक ऐसा ग्रंथ है, जिसके आधार पर सूरदास की कीर्तिपताका फहरा रही है किन्तु, अपने वर्तमान रूप में उसे भी प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। निश्चयात्मक रूप से यह नहीं बताया जा सकता कि सूर–सागर में कितने पद हैं। कहा जाता है कि सूरसागर में सवा लाख पद थे। सूरसागर में अनेक सूरों के पद सम्मिलित हैं। पदों की भणिता में ही **'सूर'** आता है, कही 'सूरजदास' और कही **'सूरस्याम'**।[10]

वस्तुतः सूरदास की प्रतिभा का उत्कर्ष **'सूरसागर'** के दसवें सर्ग में दिखाई पड़ता हैं। इसमें कृष्ण के बाल और यौवन की लीलाएं वर्णित हैं। इसमें मुख्य रूप से पाँच विषयों पर सूरदास जी की दृष्टि केन्द्रित है– बाललीला, गौचारण, बंशीवादन, रास और भ्रमरगीत। भ्रमरगीत का प्रसंग सबसे अधिक विस्तृत और मर्मस्पर्शी हैं।

जायसी, सूर और तुलसी हिन्दी के महान कवि है विचारधारा में सभी अलग–अलग है। परन्तु भक्ति के स्तर पर सब एक हैं। उनके काव्यों में समतापरक मानवीय जागरूकता और जीवन की अशेष संभावनाएं दिखाई

पड़ती हैं लेकिन, इस महान परम्परा की परिणति रीति काव्य में होती हैं। 17वीं शताब्दी में यह आंदोलन दम तोड़ देता है।

भक्तिकाव्य का मूल स्वर उस सामान्य पुरूष का पक्षधर था, जो ब्राह्मणवाद के पक्षधर और संरक्षक सामंतों द्वारा पीड़ित और इस्लाम के कट्टर अनुयायियों मुल्ला–मौलवियों द्वारा अपमानित और शोषित था लेकिन, अपने ही अन्तःविरोधियों से जो तत्कालिन समाज का भी अन्तर्विरोध था। वह मुक्त नहीं हो पाया। शास्त्रविद् पंडितों और कट्टरवादी मुल्लाओं ने भक्ति आंदोलन के समतामुलक तेवर को सामंतवादी व्यवस्था के पक्ष में धीरे–धीरे कमजोर कर दिया या फिर उसमें पाये जाने वाले अपने पक्षधर तत्त्वों को भी भरकर उछाला।

कबीर में वर्ण भेद और उसके अनुष्ठानों के विरूद्ध जो आग दिखाई पड़ती है, वह नानक, दादू, रज्जब आदि में भस्मावृत हो जाती है। जायसी की सहृदयता अन्य सूफी कवियों में नहीं मिलती। सूर का प्रेमोत्सव या जीवनोत्सव कुछ अनुष्ठानों और मधुरोपासना में बदल जाता है। तुलसी की महानता में किसी को संदेह नहीं है।

संदर्भ ग्रंथ सूची –

1. शिव कुमार मिश्र, भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य, पृ. – 37
2. वही, पृ. – 39
3. वही, पृ. – 47
4. बच्चन सिंह, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ. – 102
5. विजयदेव नारायण साही, जायसी, पृ. – 112
6. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. – 124
7. बच्चन सिंह, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ. – 105, 106
8. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ. – 98
9. अजय तिवारी, तुलसीदास का पुनर्मूल्यांकन, पृ. – 29
10. बच्चन सिंह, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ. – 119, 120
11. वही, पृ. – 174
12. वही, पृ. – 183